



Neutral Citation No. - 2026:AHC-LKO:22649

उच्च न्यायालय इलाहाबाद, लखनऊ

दांडिक अपील संख्या.- 2577/2008

उदय राज

..... अपीलार्थी(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रतिवादी(गण)

अपीलार्थी(गण) के अधिवक्ता

:- एम.पी. यादव, बृजेश कुमार

यादव

प्रतिवादी(गण) के अधिवक्ता

:-शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या. - 12

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

1. अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री एम.पी. यादव एवं प्रतिवादी-राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।

2. दिनांक 25 फरवरी 2026 के आदेश के अनुसार, अपीलार्थी संख्या 1, उदय राज का निधन हो गया था, इसलिए उनके संबंध में अपील उपशमित हो गई। इसलिए अब अपील की सुनवाई केवल अपीलार्थी संख्या 2, जगदीश के संबंध में की जा रही है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

3. वर्तमान दण्डिक अपील दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अन्तर्गत अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, अनिवार्य वस्तु अधिनियम/न्यायालय संख्या-9, सुल्तानपुर द्वारा सत्र विचारण संख्या 82/2005, राज्य बनाम उदय राज एवं अन्य, जो कि मुकदमा अपराध संख्या 455/2004, भारतीय दंड संहिता की धारा 323/504/304 थाना पीपरपुर, जनपद सुल्तानपुर से उत्पन्न हुआ, में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 25 अक्टूबर, 2008 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए निम्नवत् दण्डित किया गया है:-

- (i) भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34 के अंतर्गत: एक वर्ष का कारावास।
- (ii) भारतीय दंड संहिता की धारा 304/34 के अंतर्गत: पांच वर्ष का सश्रम कारावास एवं प्रत्येक पर 5,000/- रुपये का अर्थदंड, तथा अर्थदंड के व्यतिक्रम की स्थिति में, तीन माह का साधारण कारावास।
- (iii) दोनों सजाएं एक के बाद एक चलेंगी।

4. अभियोजन पक्ष के कथानक के अनुसार, घटना 3 जून 2004 को सुबह लगभग 8:30 बजे की बताई जाती है, जब अपीलार्थियों ने कथित तौर पर सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों पर हमला कर उन्हें घायल कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप गंभीर चोटें आईं और बाद में एक व्यक्ति, छोटू की मृत्यु भी हो गई। उक्त वाद-विवाद के दृष्टिगत, सूचनाकर्ता ने एक लिखित सूचना दी जिसे गैर-संज्ञेय रिपोर्ट संख्या 74/2004 के रूप में दर्ज किया गया, जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया, तत्पश्चात उन्हें दोषसिद्ध ठहराया गया।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों की दोषसिद्धि दर्ज करने में त्रुटि की है और इस तथ्य की अनदेखी की है कि

**अस्वीकरण:**

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अपीलार्थी उदय राज द्वारा भी एक गैर-संज्ञेय रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी, जिसे गैर-संज्ञेय रिपोर्ट संख्या 73/2004 के रूप में पंजीकृत किया गया था। यह दोनों पक्षों के मध्य हुए झगड़े को दर्शाता है जिसके कारण दोनों पक्षों को चोटें भी आई थीं, इसलिए अपीलार्थियों की दोषसिद्धि दर्ज करने से पूर्व विवाद के मूल कारण का न्यायनिर्णयन किया जाना आवश्यक था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मृतक छोटू के अतिरिक्त, दोनों पक्षों को आई अन्य सभी चोटें प्रकृति में सामान्य हैं। विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष के कथानक के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि विवाद अचानक उकसावे के कारण हुआ था और यह पूर्व-नियोजित नहीं था। उनके द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि अभियोजन पक्ष के मामले में अपीलार्थी पक्ष को आई चोटों का स्पष्टीकरण न दिया जाना एक गंभीर दोष है, और इसलिए अपीलार्थियों की संलिप्तता को संदेह से परे स्थापित किए बिना ही दोषसिद्धि दर्ज की गई है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का हवाला देते हुए यह भी तर्क दिया कि चूंकि अपीलार्थियों का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं था, इसलिए उन्होंने अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के लाभ की मांग की थी, जिसे संज्ञान में तो लिया गया किंतु उस पर विचार नहीं किया गया।

7. अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अपीलार्थी को पूर्व में किसी भी अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया गया है। वह प्रारंभ में ही यह प्रस्तुत करते हैं कि वे इस मामले में गुण-दोष के आधार पर बहस नहीं कर रहे हैं और न ही दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय एवं आदेश को चुनौती दे रहे हैं, बल्कि अपने तर्कों को केवल सजा के आदेश के संबंध में ही सीमित रख रहे हैं। यह भी तर्क दिया गया है कि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के इस कथन को दर्ज करने के बावजूद कि वह अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958

**अस्वीकरण:**

*अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।*

के अंतर्गत लाभ पाने के पात्र थे, तथापि उक्त पहलू के संबंध में कोई विचार-विमर्श नहीं किया गया है।

8. यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से यह प्रकट होगा कि अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के अंतर्गत परीक्षा का लाभ देने का अनुरोध किए जाने के बावजूद, और इस तथ्य के होते हुए भी कि अपीलार्थी का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं था, उक्त लाभ को बिना कोई कारण बताए अस्वीकार कर दिया गया।

9. अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त तर्कों के दृष्टिगत, यह अपील जहाँ तक आक्षेपित निर्णय एवं दोषसिद्धि के आदेश से संबंधित है, निरस्त की जाती है। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश दिनांक 25 अक्टूबर, 2008 की एतद्वारा पुष्टि की जाती है।

10. अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित है कि अपीलार्थी को पूर्व में किसी भी अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया गया है, विचारण न्यायालय को अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 (इसके पश्चात 'अधिनियम, 1958' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों को लागू करना चाहिए था। यह भी तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी को सजा सुनाते समय न तो अधिनियम, 1958 के प्रावधानों को और न ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के प्रावधानों को ही लागू किया है। आक्षेपित निर्णय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 या अधिनियम, 1958 के प्रावधानों का लाभ न देने का कोई विशेष कारण भी दर्शित नहीं किया गया है।

10. संहिता की धारा 361 का अनुप्रयोग, लाभकारी प्रावधानों अर्थात् संहिता की धारा 360 अथवा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के साथ या उनके बिना, किया जाना अपेक्षित है। यदि

**अस्वीकरण:**

*अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।*

न्यायालय उक्त दोनों प्रावधानों में से किसी का भी अनुप्रयोग न करने का निर्णय लेता है, तो ऐसी स्थिति में, जब अभियुक्त अपराधी अन्यथा संहिता की धारा 360 अथवा अधिनियम, 1958 की धारा 3 या 4 के प्रावधानों का लाभ प्राप्त करने हेतु पात्र हो, न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह लाभकारी प्रावधान लागू न किये जाने के विशेष कारण अभिलिखित करे।

11. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अभियुक्त-अपीलार्थी के पास लाभकारी विधान, अर्थात् अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के लाभ का दावा करने का वैधानिक अधिकार है और न्यायालय का यह कर्तव्य था कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 के अंतर्गत अनिवार्य रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 या अधिनियम, 1958 की धारा 3 या 4 की प्रयोज्यता पर विचार करे। यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 या अधिनियम, 1958 के प्रावधानों को लागू नहीं किया गया था, तो न्यायालय को इसके कारणों को दर्ज करना चाहिए था। अतः, यह तर्क दिया गया है कि इस सीमा तक, आक्षेपित निर्णय एवं आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 के प्रावधानों का उल्लंघन होने के कारण गंभीर अवैधता से युक्त है, एवं इसलिए, यह धारणीय नहीं है।

12. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने दण्डिक अपील का विरोध किया है, तथापि उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध ऐसा कुछ भी प्रतिकूल नहीं है कि उसका कोई पूर्व आपराधिक इतिहास रहा हो। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360/361 के प्रावधानों के अंतर्गत, यह न्यायालय लाभ प्रदान करने पर विचार कर सकता है। हालांकि, यह स्वीकार किया गया है कि अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 के लाभ के संबंध में तर्क दिये गए थे, किंतु उस पर विचार नहीं किया गया।

13. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन के पश्चात्, चूंकि यहाँ केवल अच्छे आचरण की परीक्षा के

**अस्वीकरण:**

*अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।*

पहलू पर न्यायनिर्णयन किया जा रहा है, अतः दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 एवं 361 अच्छे आचरण की परीक्षा पर रिहा करने के आदेश से संबंधित हैं। यह प्रावधान करती हैं कि जहाँ 21 वर्ष से कम आयु का न होने वाला कोई व्यक्ति केवल जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, अथवा जब 21 वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है जो मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं होती है, तो दोषसिद्धि दर्ज करने वाले न्यायालय के लिए अपराधी की आयु, चरित्र या पूर्ववृत्त अपराधित इतिहास और उन परिस्थितियों, जिनमें अपराध किया गया था, सहित विभिन्न पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है। न्यायालय को अपराधी को अच्छे आचरण की परीक्षा पर रिहा करना चाहिए और उसे कोई दंड देने के बजाय यह निर्देश देना चाहिए कि उसे प्रतिभुओं के साथ या उनके बिना, शांति बनाए रखने और सदाचारी बने रहने के लिए उक्त अवधि के दौरान उपस्थित होने और दंड पाने के लिए बंधपत्र निष्पादित करने पर रिहा कर दिया जाए। अपीलीय न्यायालय या उच्च न्यायालय अथवा सत्र न्यायालय द्वारा भी ऐसी शक्तियों के प्रयोग का प्रावधान किया गया है।

14. उक्त संहिता की धारा 361 कुछ मामलों में विशेष कारण दर्ज किए जाने का निर्देश देती है, जिसका अर्थ यह है कि यदि कोई अभियुक्त धारा 360 के लाभ का या अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के अंतर्गत, अथवा बाल अधिनियम, 1960 के अंतर्गत किशोर अपराधी या किशोर अपराधियों के प्रशिक्षण या पुनर्वास से संबंधित किसी अन्य विधि के लाभ का पात्र है, किंतु उसे ऐसा लाभ प्रदान नहीं किया गया है, तो न्यायालय अपने निर्णय में ऐसा न करने के विशेष कारणों को अभिलेखित करेगा।

**अस्वीकरण:**

*अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।*

15. इस विषय पर केन्द्रीय विधायन, अर्थात् परिवीक्षा अधिनियम, 1958, विशेष रूप से उसकी धारा 3 एवं 4, न्यायालय की उन शक्तियों को इंगित करती हैं, जिनके अंतर्गत कुछ अपराधियों को भर्त्सना देकर मुक्त किया जा सकता है तथा कुछ अपराधियों को सदाचार की परिवीक्षा पर रिहा किया जा सकता है।

16. उत्तर प्रदेश राज्य में लागू राज्य विधायन, उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 है, जिसकी धारा 3 एवं 4 क्रमशः न्यायालय की उन शक्तियों से संबंधित हैं, जिनके अंतर्गत कुछ अपराधियों को भर्त्सना देकर तथा सदाचार की परिवीक्षा पर मुक्त किया जा सकता है।

17. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 और 361 की प्रयोज्यता के पहलू पर इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा उत्तर प्रदेश बनाम मिश्री लाल एवं अन्य, 1982 CrLJ 1420 में प्रकाशित, के मामले में विचार किया गया था। निर्णय का प्रासंगिक अंश निम्नवत है:-

"26. ...उत्तर प्रदेश में धारा 360 के प्रयोग को वर्ष 1975 के एक अध्यादेश द्वारा वापस ले लिया गया था। उस अध्यादेश को निरस्त कर दिया गया और उसके स्थान पर दंड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, संख्या 16, वर्ष 1976 लाया गया। इस अधिनियम को 30-4-1976 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई और इसे 1-5-1976 के उत्तर प्रदेश असाधारण गजट में प्रकाशित किया गया। इस अधिनियम की धारा 12 ने उक्त अध्यादेश को निरस्त कर दिया और यह निर्धारित किया कि ऐसे निरसन के बावजूद, अध्यादेश के अंतर्गत किया गया कोई भी कार्य या की गई कोई भी कार्रवाई इस अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत की गई मानी जाएगी, मानो यह अधिनियम दिनांक 28 नवम्बर, 1975 से प्रवृत्त हुआ हो। विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा वाद का निर्णय दिनांक 02.02.1976 को किया गया था। संशोधन अधिनियम संख्या 16/ 1976 की धारा 10 द्वारा संहिता की धारा 484 में संशोधन करते हुए खण्ड (घ) के उपरान्त निम्नवत खण्ड (ड) जोड़ा गया:-

**अस्वीकरण:**

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

“(ड)... संयुक्त प्रांत प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938..... उत्तर प्रदेश राज्य में प्रभावी बना रहेगा .... तथा तदनुसार इस संहिता की धारा 360 के प्रावधान उस राज्य में लागू नहीं होंगे और धारा 361 के प्रावधान इस प्रकार लागू होंगे कि उसमें उल्लिखित केन्द्रीय अधिनियमों के संदर्भों के स्थान पर उस राज्य में प्रवृत्त तत्समकक्ष अधिनियम के संदर्भ प्रतिस्थापित माने जायेंगे।”

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 यह उपबन्धित करती है कि जहाँ किसी मामले में न्यायालय अभियुक्त व्यक्ति के साथ धारा 360 अथवा परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के अधीन, या बाल अपराधी के साथ बाल अधिनियम, 1960 अथवा उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि, जो बाल अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण अथवा पुनर्वास से संबंधित हो, के अधीन व्यवहार कर सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया, तो वह ऐसा न करने के विशेष कारण अपने निर्णय में अभिलिखित करेगा।

उपरोक्त प्रावधान को ऊपर उल्लिखित धारा 484 के खण्ड (ड) के साथ पढ़ने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 के लाभ का विस्तार न किये जाने के विशेष कारण अभिलिखित करे।”

18. इस प्रकार, जिन भौगोलिक क्षेत्रों में उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम लागू किया गया है, वहाँ दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के स्थान पर उक्त अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन किया जायेगा। इस प्रकार किसी विशिष्ट क्षेत्र में परिवीक्षा अधिनियम के प्रवर्तन से उस क्षेत्र में संहिता की धारा 360 के प्रावधानों की प्रयोज्यता अपवर्जित हो जाती है, तथापि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 के अधीन न्यायालय का यह बाध्यकारी कर्तव्य होगा कि वह इस प्रश्न पर विचार करे कि परिवीक्षा अधिनियम का लाभ क्यों न प्रदान किया जाये।

#### अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

19. जहाँ तक अभियुक्त-अपीलार्थी को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ प्रदान करने की वांछनीयता का प्रश्न है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सीताराम पासवान एवं अन्य बनाम बिहार राज्य**, AIR 2005 SC 3534 में निम्नवत व्यवस्था दी है:-

"इस विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति तथा अपराधी के चरित्र पर विचार करना आवश्यक है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की गंभीरता तथा उससे पीड़ित पर पड़े प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण से मूल्यांकन करना चाहिए। परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अधीन अभियुक्त को उपलब्ध लाभ, उक्त प्रावधानों में निहित सीमाओं के अधीन है तथा "सकता है" शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अपराध की प्रकृति, अपराधी के चरित्र तथा वाद की समस्त परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए अपराधी को परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 अथवा 4 के अधीन रिहा किया जाये अथवा नहीं, इसका विवेक न्यायालय में निहित है। परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अधीन शक्तियाँ न्यायालय में तब निहित होती हैं, जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो मृत्युदण्ड अथवा आजीवन कारावास से दण्डनीय न हो। उक्त शक्ति का प्रयोग न्यायालय दोषसिद्धि दर्ज करते समय कर सकता है और यदि न्यायालय यह उपयुक्त समझे कि वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति तथा अपराधी के चरित्र सहित अन्य तथ्यों को देखते हुए अभियुक्त को उक्त लाभ प्रदान किया जाना चाहिए, तो न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय अथवा पुनरीक्षण स्तर पर भी कर सकता है तथा यह न्यायालय भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील की सुनवाई करते समय इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है।"

20. **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**, AIR 2017 SC 660 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नवत अभिमत व्यक्त किया:-

**अस्वीकरण:**

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"20. ...रतन लाल बनाम पंजाब राज्य, AIR 1965 SC 444 में, न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत की ओर से बोलते हुए इस प्रकार विचार व्यक्त किए:-

"यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदार प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य व्यक्तिगत अपराधी को दंडित करने से अधिक उसमें सुधार करना है। मोटे तौर पर कहा जाए तो, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों, तथा मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध करने के दोषी अपराधियों और कम गंभीर अपराध के दोषी अपराधियों के बीच अंतर करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, अधिनियम के उचित प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन, उन्हें भर्त्सना के बाद या अच्छे आचरण की परीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेक न्यायालय को दिया गया है, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह व्यादेश दिया गया है कि वह उन्हें तब तक कारावास की सजा न सुनाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र भी शामिल है, को देखते हुए उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना वांछनीय नहीं है।"

21. उपरोक्त प्रावधानों एवं निर्णयों की वर्तमान वाद में प्रयोज्यता के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि कथित घटना वर्ष 2004 की है, जिसमें अधिकतम पाँच वर्ष का कारावास एवं अर्धदण्ड अधिरोपित किया गया है। उक्त घटना के उपरान्त 31 वर्ष से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है।

22. जहाँ तक दोषसिद्धि के भाग का प्रश्न है, इस न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, विकृति अथवा त्रुटि परिलक्षित नहीं होती है, किन्तु उपर्युक्त

#### अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

विचार-विमर्श को दृष्टिगत रखते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी पर अधिरोपित दण्ड में संशोधन किया जाना अपेक्षित है।

23. निम्नवत संशोधनों के साथ यह अपील **आंशिक रूप से स्वीकृत** की जाती है:-

23.1 अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी संख्या-2, जगदीश की दोषसिद्धि को यथावत् बनाए रखा जाता है। अपीलार्थी संख्या-2-अभियुक्त के दण्डादेश में इस सीमा तक संशोधन किया जाता है कि उसे उत्तर प्रदेश परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ प्रदान करते हुए परिवीक्षा पर इस शर्त के साथ रिहा किया जाता है, कि वह आज से एक वर्ष की अवधि तक शान्ति एवं सदाचार बनाए रखेगा तथा अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष रु.30,000/-की दो जमानतें एवं निजी मुचलका प्रस्तुत करेगा, साथ ही इस आशय का एक प्रतिज्ञान-पत्र भी देगा कि वह आज से एक वर्ष की अवधि तक शान्ति एवं सद्व्यवहार बनाए रखेगा। उपर्युक्त शर्तों में से किसी का उल्लंघन किये जाने की स्थिति में अपीलार्थी संख्या-2 अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा अधिरोपित दण्ड भुगतने हेतु बाध्य होगा। उपर्युक्त बन्धपत्र अपीलार्थी संख्या-2 द्वारा आज से एक माह के भीतर जिला परिवीक्षा अधिकारी, सुलतानपुर के समक्ष, सम्बन्धित न्यायालय को सूचित करते हुए, प्रस्तुत किये जायेंगे।

24. आदेश की प्रमाणित प्रति आवश्यक अनुपालन हेतु तत्काल सम्बन्धित न्यायालय एवं जिला परिवीक्षा अधिकारी, सुलतानपुर को भी प्रेषित की जाये।

(न्यायमूर्ति मनीष माथुर)

मार्च 31, 2026

प्रभात

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।